काशी मरणान्मुक्ति पर एक विहंगम दृष्टि

डॉ. श्रीकांत उपाध्याय

'काशी मरणान्मुक्ति' एक ऐसा उपन्यास है, जिसके पर्व-पर्व आध्यात्मिक उच्छ्वास, अध्याय-अध्याय दार्शनिक निःश्वास चित्रित हैं और उन्हीं से होकर भारतीय जीवन का श्रेय और प्रेय कथा में प्रवाहित हुआ है।

धार्मिक विश्वास है कि जो काशी का सेवन करते हुए मृत्यु-वरण करता है, वह मुक्त हो जाता है — काश्यां मरणान्मुक्तिः। उपन्यासकार इस मंत्र को भेदकर और भी आगे जा निकलता है : कोई भी हो, हाथ में किसी भी धर्म का ध्वजदंड हो — कहीं भी हो, भूमंडल के किसी भी अक्षांश-देशांतर पर हो, यदि उसके विग्रह में अनासक्ति चरितार्थ हो गई है, तो वह कैवल्य को प्राप्त होगा।

लेखक मानव को जन्म नहीं, अवतरण मानता है। उदात्त भावोर्मियों से लहराता जीवन साक्षात मोक्ष है।

मनोज ठक्कर वेदांती दृष्टि के लेखक हैं वे शून्य को भाव से भरते हैं। वे अतिशय अनुभूतियों के लेखक हैं, जो अपनी तीर्थयात्राओं के दौरान भारतीयता का गहरा एहसास करते हैं। यह क्रांतदर्शी लेखक देखता है कि मानव काया आश्चर्यों, अचरजों, अजूबों और अनहोनियों से संपन्न है।

उपन्यासकार जीवन को आरोहण-पर्व मानता है। वह शाप को, शून्य को, जुगुप्सा-विद्रूपता के धरातल को उलट देता है। वह शोक को श्लोक में बदल देता है।

उपन्यास के 'महा'नायक की कथा इलाहाबाद के फाफामऊ गाँव के गंगेय घाट की श्मशानभूमि से आरंभ होती है और बनारस के मणिकर्णिका के महाश्मशान पर जाकर समाप्त होती है। कथा के विस्तार में काशी ही नहीं, भारतभूमि के विशाल क्षेत्र में अवस्थित द्वादश ज्योतिर्लिंग एवं चारों धाम की आह्लादकारी तीर्थयात्राएँ भी संपन्न होती हैं।

यशोदा का मातृत्व, इस्माइल चाचा का वात्सल्य, महाश्मशान के डोम भूतनाथ की श्रद्धाजनित स्नेहवृष्टि—पाठक को उच्चतम भावों से साक्षात्कार कराते हैं।

मनोज ठक्कर का यह उपन्यास इक्कीसवीं सदी के उस दौर में आया है, जहाँ नित्यप्रति त्रासदियाँ घट रही हैं, हिंसाएँ, क्रूरताएँ घिरती आ रही हैं। सर्वत्र-तम-सर्वत्र पिशाचनृत्य हो रहा है। ऐसी भयावह स्थिति में यह औपन्यासिक कृति एक

उदबोधन लेकर भारतीय जनजीवन में उस प्रकार उतरता है, जिस प्रकार कोई सुपर्ण बनारस की चंद्राकार गंगा के प्रवाह पर अवतीर्ण होता है।

लेखक को पाठक की दृष्टि बदलने में महारत हासिल है। वह महाश्मशान मणिकर्णिका को वसुंधरा की कटितियकता पर सुशोभित मणिमेखला बना देता है। धू-धू कर जलती चिता शय्या क्षीरसागर की शेषशय्या में बदल जाती है और बीभत्स शव कैलासभूमि पर खड़े गंगाधर में परावर्तित हो जाता है।

कथा के आवर्त-विवर्त में बनारसी साड़ी के शिल्पियों — जुलाहों का आर्तनाद प्रतिध्वनित हुआ है, पंडों के कृष्णपक्ष की अमावस्याएँ उदघाटित हुई हैं, आदिवासियों की अमानवीताएँ चित्रित हुई हैं, बनारस की विलासभूमियाँ झलक दे गई हैं। उपन्यास की पृष्ठभूमि में जीवन के हाहाकार गूँज रहे हैं।

उपन्यास के समापन पर्वों में महानायक के प्रयाण का हृदयविदारक दृश्य उपस्थित किया गया है। नायक का, समय से पहले, चला जाना क्रांति उपस्थित कर देता है। शोकाकुल काशी देखी नहीं जाती। गांगेय तट का रुदन-महोत्सव प्राणों पर गाज गिराता है।

लोकोत्तर काशी का आविर्भाव होता है। समाधि में जाकर प्राण विसर्जन करनेवाला महा' चांडाल परमयोगी की महिमा धारण करता है।

महा का महेश्वर हो जाना ही उपन्यास का गंतव्य है।

जिस प्रकार मालवा क्षेत्र में, जाड़े के ऋतु पर्व पर, मावठा की वृष्टि होती है और वही रात के निस्तब्ध पहरों में गेहूँ की कोंपलों के अंतस्तल में प्राणज्योति स्थापित कर देती है, उसी प्रकार उपन्यास का यह प्रसंग पाठक के अंतरतम में जीवनज्योति प्रज्वलित कर अंतर्धान हो जाता है।

फोन (020) 22952238
सात अप्रैल 2011

श्रीकांत उपाध्याय
20/3 शिंदे नगर
बावधन
एन डी ए रोड, पुणे 411021